ISSN No. : 2394-0344 Remarking : Vol-2* Issue-4*September 2015

श्रीमद्भागवतपुराण में शिव का कल्याणकारी स्वरुप

अशोक कवंर शेखावत
व्याख्याता,
संस्कृत विभाग,
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
झालावाड़, राजस्थान

सारांश

पुराण साहित्य वाङ्मय तप के महत्वपूर्ण सोपान है जो सृष्टि सृजन, संचलन एवं विलयन की श्रृंखला में तथ्यपरक एवं श्रेयस्कर ज्ञान कोष है। पुराण जनकल्याण के महनीय लक्ष्य को सम्पादित करते हैं। 'श्रीमद्भागवत्पुराण' के 'दक्षयज्ञ का सतीप्रसंग एवं सागरमंथन का विषपानप्रसंग' दोनों शिव के अनुकरणीय त्याग एवं कल्याणकारी स्वरुप का प्रतिपादन करते हैं।

मुख्य शब्द : 'क्रान्तदर्शी, नवनवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा, श्रेयस्कर, तापत्रय, शर्वसम, मन्युना, हालाहल, अनुद्वेगकर, लोकत्रय, सकृत्, मुक्तवैरके, दूयता, वक्रधियां, निर्मन्थध्वम्।''

प्रस्तावना

क्रान्तदर्शी कवि की नवनवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा स्वर्णावरण से आवृत्त मिथ्या के भीतर स्थित अन्तःसत्ता का साक्षात्कार करती है, तो अन्तश्चेतना के सहज साक्षात्कार की इस प्रक्रिया में कवि सामाजिक हृदय के साथ एकाकार होकर उसकी अनुभूतियों को, उसकी पीड़ाओं को, संवेदनाओं को, दृष्टिकोण को, भावों के सतत प्रवाह को महसूस करता है तथा वाङ्मय के कल्याणकारी स्वरुप को सार्थक करते शब्दार्थ रुप में सम्यक अभिव्यक्ति देता है। सांसारिक कल्याण एक साहित्यकार का परम तप है, जिसमें उसे स्वर्ण की तरह तपना होता है तथा सहृदय हृदय की कसौटी पर खरा उतरना होता है। इसी वाङ्मय तप की ओर संकेत भगवद्गीता में भी दर्शनोय है। जिसमें कहा गया है कि मधुरवाणी और सत्य तथा कल्याणकारी वाक्यों का प्रयोग ही सर्वोत्कृष्ट साधना या वाङ्मय तप कहा गया है–

'अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मय तप उच्यते।।[1]

पुराण साहित्य इस वाङ्मय तप के महत्त्वपूर्ण सोपान है जो सृष्टिसृजन, संचलन एवं विलयन की श्रृंखला में तथ्यपरक एवं श्रेयस्कर ज्ञान कोष है। पुराण ज्ञान संवर्धन करने के साथ जनकल्याण के महनीय लक्ष्य को भी सम्पादित करता है। पुराणों में श्रीमद्भागवतपुराण सर्वाधिक पठनीय, अनुसरणीय एवं वरेण्य है। यह जीवन परक समस्त ज्ञान का, दर्शन का, व्यवहारिकता का, आध्यात्मिकता का, तापत्रय निवारण का, परमानन्द प्राप्ति का, जीवन मूल्यों का एवं कल्याण का मार्ग प्रशस्त करता है। यह भारत भूमि की विशाल जीवनगाथा है, धर्म का प्रमाण है, किंकर्तव्यविमूढ़ का मार्ग है, शरणहीन की शरण है, इहलौकिक एवं पारलौकिक कल्याण की कुन्जी है।

श्रीमद्भागवतपुराण में शिव तत्व की विवेचना प्रसंगानुसार कतिपय स्थानों पर महत्त्वपूर्ण संदर्भों में प्राप्त होती है। शिव जो सत्य का ही स्वरुप है। यह परम सत्य है सृष्टि के पूर्व भी, सृष्टि के समय भी और सृष्टि प्रलय के उपरान्त भी शिव शब्द का तात्पर्य ही है 'कल्याण'। शिव ही शंकर है। शं करोति इति शंकरः। सृष्टि की उत्पत्ति, पालन एवं संहार कार्य सम्पन्न करते हुए शिव ही ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र के स्वरुप को धारण करते हैं। इस मांगलिक स्तुति में भी इस ओर संकेत किया गया है–

''लोकत्रयस्थितिलयोदयकेलिकारः
कार्येण यो हरिहरद्रुहिणत्वमेति।
देवः स विश्वजनवाङ्मनसाविवृत्त–
शक्तिः शिवं दिशतु शश्वदनश्वरं वः।।[2]

श्यति पापम् इति शो पूर्वक वन् धातु से निष्पन्न शिव का शाब्दिक अर्थ शुभ मांगलिक, सौभाग्यशाली होता है। 'शिव' यह दो अक्षरों का नाम प्रसंगवश भी एक बार जिसके मुख से निकल जाये तो उस मनुष्य के सारे पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं–

''यद् द्वयक्षरं नाय गिरेरितं नृणां
सकृत्प्रसंगादघमाशु हन्ति तत्।[3]

शिव से बढ़कर संसार में कोई नहीं है। वे सभी शरीर धारियों की प्रिय आत्मा है। उनका न तो कोई प्रिय है, न अप्रिय है। अतः वे निर्वैर हैं। वे सबके कारण एवं सर्वरुप हैं–

'न यस्य लोकेऽस्त्यतिशायनः प्रियस्तथाप्रियो देहभृतां
प्रियात्मनः।'
तस्मिन् समस्तात्मनि मुक्तवैरके ऋते भवन्त कतमः
प्रतीपयेत्।[4]

शिव के इसी मांगलिक, लोकोपकारक, कल्याणकारी, अनुपम स्वरुप को महाभारत में इस प्रकार व्यक्त किया गया है–

नास्ति सर्वसमो देवो नास्ति शर्वसमा गतिः।
नास्ति शर्वसमो दाने नास्ति शर्वसमो रणे।।[5]

संसार के समक्ष शुभंकर करणीय कार्यों का, आचरणीय व्यवहार का एवं उत्कृष्ट त्याग का दृष्टान्त प्रस्तुत करने वाले दो प्रसंग श्रीमद्भागवत के दर्शनीय है– दक्षयज्ञ का सतीप्रसंग तथा सागर मंथन का विषपान प्रसंग। ये दोनों प्रसंग लोक के लिए आदर्श व्यवहार के प्रतिमान है। शिव ने लोक के समक्ष अपने व्यवहार से अनुकरणीय मार्ग प्रशस्त किया है। सामान्य जीवन में यदि शिव के इस लोक कल्याणकारी स्वरुप का ध्यान करके आचरण में उतारा जाए तो यह निश्चित रुप से जनमंगलकारी सिद्ध होगा।

श्रीमद्भागवत् के चतुर्थ स्कन्ध के दूसरे अध्याय के प्रारम्भ में विदुर ने जब प्रजापति दक्ष के द्वारा अपनी पुत्री सती के अनादर एवं भगवान शिव से शत्रुभाव के विषय में जिज्ञासा करने पर मैत्रेय ने बताया कि वैदिक वाक्यों से कर्मकाण्ड को ही प्रधान मानने वाला देह बुद्धि में ही आत्मस्थ रहने वाले, उच्च पद के अभिमानी दक्ष ने शिव के द्वारा उठकर सम्मान न देने से आक्रोशित होकर उनको यज्ञभाग से वंचित कर दिया। प्रजापति अधिपति बनने पर शिव के अपमान के उद्देश्य से ही दक्ष ने 'बृहस्पतिसव' नामक महायज्ञ का आयोजन किया। उन्होंने शिव का छोड़कर सभी सम्बन्धियों, ब्रह्मर्षियों, देवर्षियों, पितरों और देवताओं को सपत्नीक निमन्त्रित किया। सती के द्वारा पिता के यहाँ महायज्ञ में जाने के लिए आग्रह करने पर जो उपदेश शिव ने सती को दिया है वह समस्त मनुष्य लोक के लिए सामान्य शिष्टाचार का महत्वपूर्ण उपदेश है। शिव कहते है कि आत्मसम्मान की रक्षा हेतु एवं सामान्य लोक व्यवहार की मर्यादा की रक्षा के लिए ये ध्यातव्य है कि बिना निमन्त्रण के बन्धुजनों के यहाँ नहीं जाना चाहिए–

''त्वयोदितं शोभनमेव शोभने अनाहूता अप्यभियन्ति।
ते यद्यनुत्पादित दोषदृष्टयो बलीयसानात्यमदेन मन्युना।।''[6]

शक्ति, सामर्थ्य, गुण एवं विलक्षणताऐं गुणियों के पास गुण है परन्तु यदि दुर्जन के पास पहुँच जाए तो अवगुण हो जाते है।

''विद्यातपोवित्तवपुर्वयःकुलैः सतां गुणैः षड्भिरसत्तमेतरैः।
स्मृतौ हतायां मृतमानदुर्दृशः स्तब्धा न पश्यन्ति हि धाम
भूयसाम्।।''[7]

अर्थात् विद्या, तप, वित्त, सुन्दर शरीर, युवावस्था तथा उच्च कुल में छः सत्पुरूषा के गुण दुर्जनों के पास जाकर अवगुणों में परिवर्तित हो जाते है। ऐसे विवेकहत मनुष्य महापुरूषों के तेज को समझ नहीं पाते।

शिव कहते है कि असंवेदनशील एवं अहंकारी मनुष्य के यहाँ जाने से अपमान एवं तिरस्कार का भय होता है, क्योंकि विद्धता के अभिमान से युक्त मनुष्य सहज सदाचार को भूल कुटिलता का आचरण करता है, आगत अतिथि का तिरस्कार कर उसके मर्म को आहत करता है, ह्रदय को क्षतविक्षत कर देता है, अविस्मरणीय घाव देता है, जीवन भर पश्चाताप देता है। इसलिए स्नेहिल निमन्त्रण के बिना ज्ञानलवदुर्विदग्ध अंहकारी के यहाँ कदापि नहीं जाना चाहिए। आत्मकल्याण एवं आत्मसम्मान की आकांक्षा रखने वाले एवं अपमान के भय से सुरक्षा चाहने वाले प्रत्येक संवेदनशील सज्जन पुरूष के लिए यह सदुपयोग है। इसकी अवज्ञा करके सती की तरह अहित ही होगा परन्तु दक्ष को दिया गया दण्ड दुष्टों के लिए संदेश भी है कि घृष्टतापूर्वक किए गए अपराध का फल अवश्यंभावी है। शिव की शक्ति एवं सामर्थ्य अक्षम्य अपराध के लिए दण्डित करने के लिए कृत संकल्प है।

परन्तु अंत में दक्ष पर दया करके, उसको बकरे का मुंह लगाकर यज्ञपूर्ण करवाने का कर्म उनके आशुतोष स्वरूप को प्रकट करता है और सज्जनों के स्वरूप को भी। सज्जन अपने ह्रदय में कटुता धारण नहीं करते, उनके ह्रदय में विकार नहीं रहते उनमें प्रतिशोध का उद्देश्य कम और परिष्कार का लक्ष्य ज्यादा रहता है इसीलिए अपराध बोध होने पर वे उन्हें शीघ्र ही क्षमा भी कर दे ते है। शिव का मन्तव्य दर्शनीय है।

यथा–

''नाघ प्रजेश बालानां वर्णये नानुचिन्तये।
देवमायाभिभूतानां दण्डस्तत्र धृतो मया।।''[8]

पराजित, विनाश, हताश एवं श्रीहीन होने पर आलस्यरहित होकर सतत प्रयत्नशीलता से ही समृद्धि एवं सौभाग्य को पुनः प्राप्त किया जा सकता है। श्रीमद्भागवत का सागरमंथन संसार सागर में सुखरूपी अमृत की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील प्रत्येक मनुष्य के लिए प्रेरणीय है। ईश्वर में आस्था एवं अनवरत क्रियाशीलता सदैव शुभफलदायी होती है। दैत्यों से पराजित श्रीहीन हुए देवगणों को पुनः समृद्धि की प्राप्ति सर्वकालिक एवं सर्वश्रेष्ठ उपाय बताते हुए कहते है।

''सहायेन मया देवा निर्मन्थध्वमतन्द्रिताः।
क्लेशभाजो भविष्यन्ति दैत्या यूयं फलग्रहाः।।''[9]

श्री हरि की आज्ञानुसार दैत्यों से संधि कर सागर मंथन करने पर सर्वप्रथम निकले हालाहल विष ने प्रजा का जीवन संकट में डाल दिया। तब प्राणियों ने रक्षा के लिए शिव से प्रार्थना की। प्रजा के संकट से करूणाद्र होकर करूणामय भागवान शिव ने संसार की रक्षा के लिए विषपान करने का निर्णय लिया। इस अवसर पर भगवती भवानी से उन्होंने जो विचार साझा किए है, वे विचार समाज के सम्पूर्ण सामर्थ्यवान एवं प्रभुत्वसम्पन्न प्राणियों के लिए है कि उनका सामर्थ्य संसार के असहाय एवं दोन–दुखियों की रक्षा के लिए है न कि उन्हें पीड़ा देने के लिए। शक्ति का सृजनात्मक एवं सकारात्मक प्रयोग संसार को गति एवं विकास देते हुए उसका कल्याण करते है। क्षमतावान लोग रक्षक बने तो समाज को किसका भय होगा ? भयहीन समाज स्वतंत्र एवं उन्मुक्त होकर विकास के विहान में विस्तार को प्राप्त करेगा। जब कोई किसी का शोषण करेगा ही नहीं तो सर्वत्र शांति, समृद्धि,

सफलता एवं सृजन होगा और यही एक कल्याणकारी समाज का स्वरूप है। शिव की यह अवधारणा सृष्टि के मंगल की ओर प्रवृत्त करती है। वे कहते है–

''आसां प्राणपरीप्सूनां विधेयमभयं हि मे।
एतावान् हि प्रभारर्थो यद् दीन परिपालनम्।।
प्राणैः स्वैः प्राणिनः पान्ति साधवः क्षणभगुरैः।
बद्धवैरेषु भूतेषु मोहितेप्वात्ममायया।।''[10]

हे देवि! जिनके पास सामर्थ्य है, उनकी सार्थकता इसी में है कि वे दीनों का परिपालन करें अपने क्षणभंगुर प्राणों के बदले विपत्तिग्रस्त प्राणियों की रक्षा करना समर्थजनों का कर्तव्य है। अतः मुझे इन प्राणियों की रक्षा के लिए तीव्र हालाहल विष का स्वयं पान करना चाहिए। शिव ने विष को पिया एवं उसे कण्ठ में हो धारण किया। संसारवासियों को उनका यह उपदेश है कि सांसारिक गरल को कण्ठ में ही धारण करें। उसका निगरण स्वयं के लिए तथा वमन अन्यों के लिए क्षयकारी होगा। शिव के इस लोककल्याणकारी स्वरूप को ही श्रीमद्भागवत् में कहा गया है –

''तप्यन्ते लोकतापेन साधवः प्रायशो जनाः।
परमाराधनं तद्धि पुरूषस्याखिलात्मनः।।''[11]

अर्थात् साधुजन प्रायः संसार के दुःख से दुःखी होते है, उनकी सहायता करते है। दीनों की यह रक्षा ही उस अखिलात्मा परमपुरूष की सबसे बड़ी आराधना है।

कितनी सुन्दर शिक्षा श्रीमद्भागवत् में वर्णित है कि लोकतापनिवारण ही भगवदाराधना है। श्रीमद्भागवत् का यह शिवस्वरूप लोककल्याणकारी एवं जीवनमूल्यों का कोष है। आत्मसम्मान, शिष्टाचार, दुर्जन स्वभाव, सज्जन प्रकृति, सामर्थ्य की सार्थकता शरणागतवत्सलता, करूणाशीलता, उदारता, लोकधर्म और ऐसे अनेक उपदेश शिव के कल्याणकारी स्वरूप के परिचायक है।

शिव का यही कल्याणमय स्वरूप, सौम्य स्वरूप, समस्त लोको को सुख देने वाला है। शान्त स्वरूप वाले शिव ही सत्य एवं सुन्दर के पर्याय है। ऐसे परम कल्याणकारी शिव को हम प्रणाम करते है –

''या ते रूद्र शिवा तनूरघोरापापकाशिनी।
तया नस्तनुवा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि।।''[12]

शिव के इस स्वरूप एवं उनके उपदेशों को जीवन में आत्मसात् करने से निश्चय ही मगंलमय सृष्टि का सृजन होगा और भारतभूमि का वैश्विक धरातल पर अभिनंदन होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. श्रीमद्भगवतगीता 17/15।
2. जगद्धरभट्टः स्तु. कुसु. त. स्तो. 3।
3. श्रीमद्भागवतपुराण 4/4/14।
4. श्रीमद्भागवतपुराण 4/4/11।
5. महाभारत, अनु. 15/11।
6. श्रीमद्भागवतपुराण 4/3/16।
7. श्रीमद्भागवतपुराण 4/3/17।
8. श्रीमद्भागवतपुराण 4/7/2।
9. श्रीमद्भागवतपुराण 8/6/23।
10. श्रीमद्भागवतपुराण 8/7/38–39।
11. श्रीमद्भागवतपुराण 8/7/44।
12. श्वेताश्वतरोपनिषद् 3/5।